

प्रो. रामजी उपाध्याय : भूली बिसरी यादें

प्रतिभा पाण्डेय

किसी अपने के बारे में सोचना, बातें करना, सुनना, गुनना और लिखना—पढ़ना अत्यन्त रोमांचकारी होता है। यह रोमांच तब और भी बढ़ जाता है जब प्रसंग उस स्वजन का हो, जो बहुमुखी, व्यापक व आवश्यकतानुरूप सर्वजनहिताय को साकार करने वाले व्यक्तित्व का धनी हो। जिसमें सिर से पांव तक अध्ययन—अध्यापन की शिक्षकीय वृत्ति साक्षात् दर्शनीय हो। कर्मपथ पर अनवरत बढ़ते रहना जिसका जीवन—मंत्र हो तथा अनुशासन, स्वाभिमान, आत्मसम्मान, ईमानदारी, सदाचरण, परदुःखकातरता व संस्कृत—प्रेम जिसके पर्याय हों। यह व्यक्तित्व था प्रो.रामजी उपाध्याय का।

मैं स्वयं को परम सौभाग्यशाली मानती हूँ क्योंकि मुझे, एक विद्यार्थी होने के अलावा प्रो. रामजी उपाध्याय की भांजी होने का जन्मना अवसर मिला है। अस्तु मैं एक भांजी की दृष्टि से प्रो. उपाध्याय (मामाजी) के विषय में कुछ संस्मरण पाठक गण के साथ बाँटना चाहती हूँ।

संस्मरण नं. 1 : मामाजी मेरे चार मामाओं में सबसे छोटे थे। बलिया जिले के मलेजी गांव के किसान परिवार में जन्मे प्रो. उपाध्याय की दो छोटी बहनों में मेरी माँ सबसे छोटी थीं। अतः स्वाभाविक रूप से माँ अपने सभी भाई बहनों की दुलारी थीं। मेरी माँ का विवाह चौदह वर्ष की आयु में हो गया था। एक बार छोटे मामाजी माँ से मिलने मेरी दादी के घर आये। मामा को देखते ही मेरी माँ रोने लगीं। मामा ने माँ को रोने से मना किया, लेकिन उनका रोना नहीं रुका। यह देखकर मामाजी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने मेरी दादी से कहा, लगता है आपके घर में मेरी बहन को बहुत कष्ट है, वरना वह मुझे देखकर क्यों रोती। मेरी माँ ने समझाया कि भैया यहाँ कोई तकलीफ नहीं है, मैंने तो बहुत दिनों बाद आपको देखा इस लिये रोना आ गया। मामाजी को इस पर भरोसा नहीं हुआ। उन्होंने अपने घर जाकर यह बात सबसे कही। मेरी नानी ने भी उनसे यही कहा कि जब ससुराल में कोई लड़की अपने मायके वालों से

मिलती है तो वह रोने लगती है, यह स्वाभाविक है, लेकिन मामा ने यह दलील नहीं मानी। इनका कहना था कि दुःख में ही आदमी अधिक रोता है। माँ यदि तुम कहती हो कि मेरी बहन मुझे देखकर रोने लगी तो मैं कभी अपनी बहन की ससुराल नहीं जाऊँगा। इस तरह न मेरी बहन मुझे देखेगी और न रोयेगी, क्योंकि मैं अपनी बहन को रोता हुआ नहीं देख सकता। उसके बाद मामाजी कभी माँ से मिलने हमारे घर नहीं आये।

संस्मरण नं. 2 : वर्ष 1968 जुलाई-अगस्त की बात है। मैंने एम.ए. पूर्वार्द्ध (संस्कृत) में सागर विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था। चूँकि मैंने पहली बार माँ को छोड़ा था इसलिये जब भी सागर के घर में मेरे माँ-बाबूजी की चर्चा चलती, मुझे रोना आ जाता था। एक दिन शाम को बगीचे में हम सभी (मामी, वनश्री, मामा) बैठे बातें कर रहे थे। बातों के दौरान माँ का जिक्र आते ही मेरी आंखें डबाडबा गईं। मामाजी ने मेरी ओर देखा और हँसते हुए कहा, “तुम यहाँ पढ़ने आई हो, मामा के घर आई हो, और एक मां के लिये रोती हो। भला सोचो तो, तुम्हारा रोना कितना बेमानी है। अरे, दो ‘मा’ मिलकर एक मामा बनाते हैं। अर्थात् तुम्हें यहाँ माँ से दो गुना प्यार मिल रहा है क्योंकि तुम मामा के पास हो। इतना सुनना था कि सभी लोग हँसने लगे और उस दिन के बाद मैं भी मामा के सामने कभी नहीं रोई।

संस्मरण नं. 3 : वर्ष 1968, सितम्बर का महीना था। मामाजी अपने कमरे में लेखन कार्य कर रहे थे। तभी वनश्री (मामा की बेटी) ने बड़ी तेज आवाज में भोजन बनाने वाली बाई से कुछ कहा। मामाजी कमरे से बाहर आये और वनश्री को चिल्लाकर बोलने से मना किया। वनश्री ने तपाक से कहा, “पिता जी मैं तो आपकी ही बेटी हूँ” मामाजी ने अत्यन्त शान्त भाव से प्रत्युत्तर दिया, तुम एक प्रोफेसर की बेटी हो और मैं एक किसान का बेटा हूँ। मेरी आवाज गांव वाले किसान की तरह ऊँची हो सकती है लेकिन तुम्हारी आवाज प्रोफेसर की बेटी वाली अर्थात् संयत और धीमी होनी चाहिए।

संस्मरण नं. 4 : मैं उन दिनों एम. ए. पूर्वार्द्ध (संस्कृत) की छात्रा थी। प्रो. उपाध्याय की निबन्ध की कक्षा थी। हम कुल छः विद्यार्थी थे। हम सभी प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी (वर्तमान कुलपति, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली) को छोड़कर प्रो. उपाध्याय से बहुत डरते थे, क्योंकि वे संस्कृत में बोलवाना चाहते थे। कभी भी संस्कृत के शब्दों के रूप, लिंग, शुद्ध-अशुद्ध, वाक्य-विन्यास आदि पूछते और तत्काल लिखकर दिखलाने को कहते थे। उस दिन निबन्ध की कक्षा में संस्कृत में बोलने की मेरी बारी थी। मैंने निबन्ध लिख तो लिया था, लेकिन सारे वाक्य सही थे, इसकी सुनिश्चितता नहीं थी। मैंने वही निबन्ध रट लिया था ताकि मौखिक रूपसे संस्कृत में बोल सकूँ। डर के मारे मेरा गला सूख रहा था। हम सभी एक को छोड़कर सिर झुकाये हुए कथा में बैठे थे। प्रो. उपाध्याय उस समय कुछ लिख रहे थे। थोड़ी देर में उन्होंने पूछा 'आज किसकी बारी है।' मैंने हाथ ऊपर किया। प्रो. उपाध्याय ने फिर पूछा 'निबन्ध लिख लिया है।' मैंने 'हाँ' कहा। तब उपाध्याय जी ने निबन्ध दिखाने के लिये कहा। मैं उठी, काँपते हाथों से लिखा हुआ निबन्ध दिखाने लगी। निबन्ध देखते ही प्रो. उपाध्याय ने मेरी अभ्यासपुस्तिका घुमाकर दूर जमीन पर फेंक दी और कहा "संस्कृत सीखना है तो पुस्तकों की सहायता ली जा सकती है। किसने कहा कि स्वयं से ही गलत लिखो। तुम्हारे लिखे दस वाक्यों में पांच गलतियाँ हैं और तुम संस्कृत की पंडित (मास्टर) बनना चाहती हो। मेहनत करो तब पांडित्य आयेगा वरना यह विषय छोड़ दो।" मैंने कभी बिना जाँचे-परखे संस्कृत माध्यम में नहीं लिखा। इस तरह मुझे सद्गुरु से शिक्षा मिली और मैंने संस्कृत में ही एम. ए. प्रथम श्रेणी में किया।

संस्मरण नं. 5 : अवकाश-प्राप्ति के बाद मामाजी सागर से बनारस चले गये थे। मामाजी बनारस में जहाँ रहते थे, वहाँ सभी मुहल्ले वाले, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाले और अन्य आस पास के बड़े-छोटे लोग मामाजी की विद्वत्ता, प्रभाव और सादगी के कायल थे। सभी आवश्यक राय मशविरा आदि के संबंध में मामाजी की राय से काम करते थे। वर्ष 1981 की बात है। एक जमीन की रजिस्ट्री होनी थी ताकि उस

पर घर बनाकर रहा जा सके। जमीन के मालिक को कुछ राशि अग्रिम दी गई और शेष धनराशि रजिस्ट्री के समय दी जानी थी। इस बीच जमीन का मुखिया आया और जमीन के पूरे पैसे (रजिस्ट्री के पूर्व) माँगने लगा। मामाजी ने कई बार उस आदमी को समझाया कि शर्त के अनुसार ही काम होगा, लेकिन वह अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। अन्त में मामाजी हँसकर कहने लगे, 'सुनो सेठ जी, मैं तो अपने चार भाइयों में सबसे कमजोर, दुबला-पतला था, जिसके कारण मेरे पिताजी ने मुझे पढ़ने के लिये भेज दिया और तुम मेरे जैसे कमजोर के प्रभाव में आ गये। सोचो यदि मेरे तीनों भाई यह जान लें कि तुम अपने वादे से मुकर रहे हो, तो तुम्हारा क्या हाल होगा, क्योंकि यदि तुम अपनी ज़िद नहीं छोड़ोगे तो मुझे उनको यह बताना ही पड़ेगा।' मामाजी की ये बातें सुनकर वह आदमी ऐसे उल्टे पाँव भागा कि फिर रजिस्ट्री वाले दिन ही नजर आया।

संस्मरण नं. 6 : प्रसंग माँ के निधन पर मामा के बलिया जाने का है। मैं घर में थी। मामा को देखकर मुझे रोना आ गया। स्वाभाविक था, क्योंकि मेरी माँ का रंग-रूप मामा जैसा था। लगता था ये दोनों जुड़वाँ भाई-बहन हैं। मामा खड़े हुए, मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "मत रोओ, अभी तो "मामा" जीवित हैं। जब भी एक माँ की याद आये, आ जावे दो माँ (मामा) मिलेंगी। इतना कहकर मामा रोने लगे। मैंने अपने जीवन में पहली बार मामा को रोते हुए देखा था।

संस्मरण नं. 7 : बात वर्ष 2007 अक्टूबर की है। मैं बनारस में मामाजी के घर में थी। मामा जी का कमरा काफी अस्त-व्यस्त था। पुस्तकें पूरे कमरे में बेतरतीब फैली थीं। मैंने सोचा आलमारियों की पुस्तकें सही ढंग से रख दूँ ताकि कमरा ठीक-ठाक लगने लगे। उस समय मामाजी नहा रहे थे। मैंने उनके कमरे में पाँव रखा ही था कि मामाजी ने कहा, "मैं समझ गया कि तुम क्या सोच रही हो। तुम मेरा कमरा ठीक करना चाहती हो, जबकि मैं ऐसा नहीं चाहता, क्योंकि सरस्वती ने मुझसे कहा है कि मैं उनके बीच में रहूँ ताकि सोते-जागते, उठते-बैठते उनकी साधना कर सकूँ। मुझे इसी कमरे की फर्श पर अच्छी नींद आती है।

पुस्तकें मुझे ऊर्जा देती हैं और कर्म के प्रति सदैव जागरूक रखती हैं। अतः इन्हें आलमारियों में बन्द रखना, परदे में रखना अनुचित होगा। मैं उल्टे पाँव लौट आई। मामाजी के निधन के बाद पुस्तकें तो उसी कमरे में थीं, लेकिन उन पर परदे थे, कुछ आलमारियों में बन्द थीं और था एक अनवरत जलता दीपक।

आज प्रो. रामजी उपाध्याय, हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी जीवन्त कृतियाँ, उनके विद्वान् पारंगत और अनेक ऊँचे अकादमिक पदों पर आसीन शिष्य उन्हें अपने कार्यों से सजीव बनाये हुए हैं। मेरी अशेष निष्ठा से उन्हें श्रद्धाञ्जलि। मैं उनकी रक्त वाहिका, अतः कृत-कृत्य।

अध्यक्षा, प्रौढ,
सततशिक्षा एवं विस्तार विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.)